

सन्दर्भ-सूची

विषय		पृष्ठ
भूमिका	...	1-11
काव्य	..	१
काव्य-भेद	...	१
पद्य-काव्य	...	२
पिङ्गल-शास्त्र	...	३
छन्द (वृत्ति)	...	४
लघु-गुरु (ह्रस्व-दीर्घ) विचार	...	६
आपश्यक-नोट	...	१०
चिन्ह और गणना	...	१२
गण	...	१३
गण तथा देवता और उनका फल	...	१५
गणान्तर-दोष-परिहार	...	१६
तुक	...	२१
सङ्गीतात्मक-छन्दें	...	२४
छन्द गत मुख्य दोष	...	२६
छन्द या वृत्ति (परिभाषा-प्रकरण)	...	२६
मात्रिक-सम-छन्द-प्रकरण	...	३४
(१) चौपाई	...	३४
(२) रौला	...	३५
(३) हरिणीतिका	...	३५
(४) तोमर	...	३६
(५) सार	...	३६

विषय		
(२८) शार्दूलविक्रीडित		४४
(२९) मत्तगपन्द	...	४५
(३०) दुर्मिल	...	४८
षष्टिक समान्तर्गत खण्डक-प्रकरण	...	४८
(३१) मनहर	...	४९
छन्द शास्त्र में गाणित विचार	...	५०
परिभाषायें	...	५०
प्रस्तार	...	५२
मात्रिक-प्रस्तार	...	५३
मात्रा-प्रस्तार में नष्ट की रीति	...	५५
वर्ण-प्रस्तार-नष्ट	...	५८
उद्दिष्ट	...	५०
मात्रा-उद्दिष्ट	...	५१
मैर	...	५३
एकावली-मैर	...	५६
खण्ड-मैर	...	५८
मात्रा-मैर	...	५९
एकावली-मात्रा-मैर	...	६०
खण्ड-मात्रा-मैर	...	६१
पताका	...	६३
मात्रा-पताका	...	६३
मर्कटी	...	६५
वर्ण-मर्कटी	...	६६
मात्रा-मर्कटी	...	६६
परिनिष्ट	...	६८
	...	६९

दो शब्द

कवि होने और काव्य करने के लिए सब से आवश्यक बात काव्य-शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करना है । साहित्य सेवियों एवं साहित्य जिज्ञासुओं के लिए भी काव्य-शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करना न केवल आवश्यक ही है, बल्कि अनिवार्य भी है, क्योंकि उसके बिना साहित्यावलोकन से उन्हें आनन्द प्राप्त होना तो दूर रहा, कतिपय कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ेगा और साहित्य से पूर्ण-परिचय भी न प्राप्त हो सकेगा ।

काव्य-शास्त्र के दो मुख्य विभाग हैं:—१. अलङ्कार-शास्त्र जिसमें काव्यान्तर्गत गुण, दोष शब्द-शक्ति (लक्षणा, व्यञ्जना, ध्वनि आदि) अलङ्कार एवं रस आदि का जो काव्य के मुख्य तत्व हैं वर्णन होता है । २.—द्वन्द्व-शास्त्र या पिङ्गल जिसमें कविता के कलेवर की रचना करने वाले षण्ों की मुख्यवस्थित नीतियों एवं रीतियों और उनसे उत्पन्न होने वाली द्वन्द्वों के नियमों का निरूपण किया जाता है ।

अनेक धन्यवाद है उन आचार्यों को जिन्होंने शब्द-ग्रन्थ की उपासना कर प्रकृति के मञ्जुलातिमञ्जुल मर्मों के संनि-रीक्षण के द्वारा सङ्गीत एवं कविता को जन्म दिया है । धन्य हैं महर्षि पिङ्गल जिन्होंने दोनों के सुन्दर सामञ्जस्य के लिए द्वन्द्वों का आविष्कार करके द्वन्द्व-शास्त्र की रचना की है । साथ ही धन्यवाद के पात्र हैं वे आचार्य एवं लेखक भी जिन्होंने इस शास्त्र के सिद्धान्तों पर सूक्ष्म दृष्टिगत करते हुए इसका विकास एवं प्रकाश किया है ।

सरस-पिङ्गल

काव्य

यों तो काव्य को कई परिभाषाएँ निम्न निम्न आचार्यों के द्वारा दी गई हैं किन्तु सर्व माधुर्य एवं सर्वमान्य परिभाषा यही है कि—
“सुन्दर सरस पदावली, मलो माधुर्य रम्य ।
स्वानाविक भाषा, हृद्य, मय भाव-गति-गम्य ॥
काव्य कहन है ताहि दुष,”

(‘धोरताल’ हन) ‘नाट्य-निबन्ध से’
अर्थात् स्वानाविक भाषा की वह सुदृढ-मञ्जुल पदावली एवं
आत्म्यावली जितनी मनोरञ्जक, माधुर्यमयी सरलता तथा
अनूत धातुपूर्ण पद विन्यास की शैली होनी है ‘काव्य’
कहलाती है ।

काव्य-भेद

आचार्यों ने काव्य के निम्न निम्न विभागों के अनुसार वि-
भिन्न प्रकार के भेद किये हैं । जैसे—

- १—भक्ति और हरय (नाटक आदि)
संगीतानक
- २—मय काव्य, पद्य काव्य, और वन्द्य (निमित्त) ।
विद्वानक
- मय काव्य एवं मुक्त काव्य

पिङ्गल-शान्त्र

[illegible]

गुणों आदि की गणना, व्यवस्था तथा उनका एक विशेष व स्थान तथा विधान के साथ संयुक्त करने की रीतियाँ कवि की गई हैं। दूसरा कारण पिङ्गल-शास्त्र के जन्म का कदाचित् भी हो सकता है कि कवियों के लिये पद्य-काव्य के रचनार्थ के मार्ग निश्चित हो जायें जिनके द्वारा काव्य, कविता के रूप में होय अपने असीम को सरलता एवं सुख के साथ पढ़्य मके।

गद्य का अपेक्षा पद्य में कुछ ऐसे विशेष गुण हैं जिनसे प्राप्त होकर काव्य में सद्गीतात्मक पद्य वस्तु लाने की आवश्यकता अनिवार्य हुई और पिङ्गल शास्त्र का जन्म हुआ।

कहता न होगा कि पद्य अपने विशेष गुणों के ही कारण इस प्रधानता, रोचकता और व्यापकता को पहुँच गया कि प्रत्येक विषय में इसका समावेश पूर्ण रूप से हो गया, और प्रायः सभी विषय परात्मक हो गये। यह बात विशेषतया मंथन में है।

सद्गीत और काव्य के सम्मिश्रण का एकमात्र फल पिङ्गल शास्त्र है, यही कविता को गद्य काव्य से पृथक् करता है।

ध्यान रखना चाहिए कि यद्यपि सद्गीत का सम्बन्ध काव्य में है और काव्य का भी सम्बन्ध सद्गीत से है—दोनों में अन्वय भय सम्बन्ध है—फिर भी दोनों एक नहीं, वरन् पृथक् पृथक् हैं—दोनों की रीतियाँ तथा मीनियाँ भिन्न ही भिन्न हैं।

द्वन्द्व (वृत्ति)

सद्गीत में सम्बन्ध रखने वाले वर्णों और मात्राओं की एक विनिश्चित व्यवस्थात्मक गणना की गई गति है जो पद्यवस्तु रखती है और गाई जा सकती है। प्रचार में रहने की बात यह है कि द्वन्द्व वर्णों (ह्रस्व, दीर्घादि) की विनिश्चित व्यवस्था एवं गणना के आधार

पर तथा महीन, लय, ताल एवं राग-रागिनी छानि को उत्कर्ष देने वाली स्वरों की विशेष व्यवस्था के आधार पर नानाधातित होता है, यही दोनों में मुख्य अन्तर है।

निष्कर्ष रूप में दो बातें कहना चाहिए कि जून में मासालों और वनों की विशेष व्यवस्था एवं गाना होता है, तथा महीनसम्बन्धी लय और गति वाली धारावाहिकता होती है।

कादा प्रकार के होते हैं:—हम्य और दीर्घ, अथवा लघु और गुरु।

नोट—जून में प्लुत स्वरों का अधिक उन्मा व्याकरण में किया गया है नहीं किया जाता, और उनमें प्लुत का नहीं रसने आते। परिष्कृत-जून में यह बात नहीं, यही प्लुत का भी स्वर-पता में आते हैं।

हिन्दी-भाषा की जून में आवा देना भी होता है कि हम्य का पानी कुछ दीर्घ और दीर्घ का पानी कुछ हम्य पर आते हैं। यह बात संस्कृत-भाषा की जून में नहीं पाई जाती है। हिन्दी-भाषा में यह भी होता आता है कि कुछ जून के कर्म आते हैं जो न जो हम्य हो सकते हैं और न दीर्घ हो, बल्कि उनका उच्चारण हम्य और दीर्घ दोनों स्वरों के बीच आने स्वर के साथ होता है। मीट है कि हमारे व्याकरणों में इन प्रकार के हम्य और दीर्घ के मान्यनिर-स्वर-धारा के अन्तर्गत या स्वर-धारा के अन्तर्गत बिना विशेष की जायना नहीं की और इसे बेवजह पहले या दोनो धाराओं के हो द्वारा नियमित करने वाले के विन्दे हो, विन्दे है जैसे—

“एक दिन एक महीन आवा :” यही एक एक का एक के गुरु हो (दीर्घ) पदा आता है और न पूर्वका हनु का लय हो।

होते हैं तो अघश्य ही दीर्घ माने जाते हैं और यह केवल दीर्घ-स्वर ही के कारण, न कि उनकी नानुनासिकता के कारण ।

विसर्ग युक्त वर्ण भी दीर्घ माने जाते हैं, किन्तु ध्यान रहे कि हिन्दी-भाषा में विसर्ग का प्रयोग बहुत ही कम होता है; केवल कुछ ही ऐसे शब्द हैं जिनके संस्कृत एवं शुद्ध रूप में ही विसर्ग का प्रयोग देखा जाता अथवा किया जाता है । उनके भाषान्तरित रूप भी बिना विसर्ग के प्रचलित हैं; जैसे:—दुःख और दुख, दुःसह और दुस्तह आदि । इसलिए कहना चाहिए कि यह नियम हिन्दी भाषा में बहुत ही कम लागू होता है ।

य—पदान्त वर्ण विकल्प रूप से गुरु माना जाता है अर्थात् आवश्यकतानुसार यदि पदान्तवर्ण लघु भी है तो भी दीर्घ मान लिया जायगा । जैसे—“भुवन मय भित्तने, धर्मसंरक्षणार्थ” में अन्तिम वर्ण “र्थ” पद के अन्त में होने के कारण, चूंकि नियमानुसार इसे दीर्घ होना चाहिये, दीर्घ माना जायगा । *

र—उन दीर्घ वर्णों को जो ह्रस्व वर्णों के समान पढ़े या बोले जाते हैं ह्रस्व तथा उन ह्रस्व वर्णों को जो कुछ दीर्घ वर्णों के समान पढ़े या बोले जाते हैं दीर्घ मानना चाहिये ।

जैसे:—‘आय मांदि भा भरोस हनुमंता ।’

यहाँ “मां” दीर्घ होता हुआ भी चूंकि ह्रस्व बोला जाता है, वही माना जायगा । इसी प्रकार—‘आह प्रलयकारी दुःखदायी

* संकुमाद्य, विकर्णदुःख, अहंर आनुस्वार ।

वर्ण पदान्त विकल्प से, दीर्घ ‘रसाम’ विचार ॥

“संकुमाद्य” दीर्घ, कानुस्वार विकर्णमिच्छम् ।

विहरेणवधरं दीर्घ, पदान्तस्य विकल्पेन ॥”

नितान्त, 'यहाँ अन्तिम 'न्त' कुछ दीर्घ सा बोझा जाता है अन् दीर्घ ही माना जायेगा। प्राचीन कवियों ने (विशेषतया प्रउ भाषा एवं अथर्व-भाषा के कवियों ने) ऐसे ह्रस्व वर्णों को दीर्घ ही बना लिया है।

जैसे—'अरिहूँक अनमल कीन्ह न रामा।' यहाँ अन्तिम "अ" को दीर्घ "भा" कर दिया गया है। इस प्रकार दीर्घ करने के लिये प्रायः दीर्घ आकार, ईकार और ऊकार का प्रयोग देखा जाता है।

ऐसे वर्णों को जो ह्रस्व और दीर्घ दोनों के मध्यस्थ-स्वर या द्ये हुए स्वर से बोले जाते हैं, लघु मानते हैं।

नोट—संगीत में स्वरों के बढ़ाने एवं घटाने की पूर्ण स्वतंत्रता होने से ह्रस्व और दीर्घ का ऐसा सूक्ष्म एवं सूढ़ विचार नहीं होता।

आवश्यक-नोट

ऐसे शब्दों के पुरुष का वर्ण जो संयुक्त वर्ण से प्रारम्भ होते हैं यदि उसके बोलने में संयुक्त वर्ण के कारण कुछ विज्ञेयता या दीर्घता भी प्रतिभात होती है, लघु होने पर भी दीर्घ माने जाते हैं; जैसे—अगन्नाथ ! मन्नाथ ! गौरीश नाथ ! प्रपन्नानुकम्पित विपन्नार्तिहारिन् ! महादेव ! ! देवेश ! देवाधिदेव ! स्मरारे पुरारे ! यमारे ! हरेति ।

नोट :—ध्यान रखना चाहिये कि उन्हीं संयुक्तवर्ण के पुरुष व वर्ण, चाहे वे किसी अन्तिम शब्द के वर्ण ही क्यों न हों, जो किस शब्द के आदि में आते हैं और ऐसी प्रकृति के होते हैं कि वे अपने पुरुषगत शब्द के अन्तिम वर्ण के साथ शीघ्र ही बोल जाते हैं और इसलिये उसको अपने उच्चारण से विज्ञेय प्रभावित करते हैं, दो

ने जाते हैं। यदि ऐसे संयुक्त वर्ण अपने पूर्ववर्ती 'वर्ण' को प्रभावित नहीं करते तो उसे वे दीर्घ भी नहीं बनाते; जैसे:—

‘मुम्भको न यह कुछ ध्यान था,
तुम रुए हो कर जा रहे।’

यहाँ पर ‘कुछ’ का हृ यद्यपि ध्यान के ध्या संयुक्त वर्ण का पूर्ववर्ती है फिर भी चूँकि उससे प्रभावित नहीं है: दीर्घ न होकर लघु ही माना गया है। इसी प्रकार स्मृति, स्तब्धन, स्तुति आदि युक्त वर्णों के पूर्ववर्ती वर्णों के गुरुत्व एवं लघुत्व का विचार करना चाहिए।

हमारा विचार तो यह है कि स्मृति आदि शब्दों के स्मृ आदि वर्ण अपने पूर्ववर्ती वर्णों को सदा प्रभावित करते हैं और इसी-तएव उन्हें सदा दीर्घ भी बनाते हैं।

ध्यान रहे कि स्मृति आदि शब्दों का प्रयोग-द्वन्द्व की आदि में इसी प्रकार करना चाहिए कि मानों वे लघु हैं। प्रायः ऐसे शब्दों का उच्चारण अस्मृति आदि के समान करके कुछ नवयुवक लोग करते हैं, उन्हें इनके प्रयोग करने में विशेष विचार कर लेना चाहिये।

ध्यान रहे कि “प्रादि” संयुक्त वर्ण दो प्रकार से बोल जाते हैं।

१—द्वित्व रूप में। जैसे:—“अप्रिय” वचन से सर्वथा है दुःख की सम्भावना” यहाँ “प्रि” का “प्र” द्वित्व रूप में बोला जाता है। अतः इसका पूर्ववर्ती वर्ण गुरु माना जायगा।

२—स्वाभाविक रूप में। जैसे:—“प्रिय अप्रिय” जनों में खता था न भेद” यहाँ “अप्रिय” गत “प्रिय” का “प्र” अपने द्वित्व रूप में न बोला जा कर केवल स्वाभाविक रूप में बोला

गण

तीन वर्णों के समूह को चाहे उनसे कोई शब्द बनता हो या न बनता हो, अथवा चाहे वे एक शब्द के हों या दो या अधिक शब्दों के हों, एक गण कहते हैं।

एक गण के तीन वर्णों में से आदि, मध्य, और अन्त के वर्णों की गुरुता और लघुता के विचार से अर्थात् गणगत लघु और गुरु वर्णों के व्यवस्था, मन्त्र एवं स्थान के विचार से गणों के आठ रूप होते हैं।

मगण, यगण, सगण, नगण, भगण, जगण, तगण, और रगण। इन नामों के आद्य वर्ण लेकर निम्न सूत्र बनता है जिसके द्वारा गणों के नाम और लक्षण सरलता से याद रह सकते हैं:—

“यमाताराजभानसलगम्”

इस सूत्र के द्वारा जिस गण का रूप जानना हो उन्हीं के इसमें दिये हुये आघातार के साथ आगे के दो और वर्ण मिलाने से अभीष्ट गण बन जायगा। जैसे:—मगण जानने के लिये सूत्र में आये हुये “मा” के साथ उसके आगे वाले ता और रा को ले कर “मातारा” बनाओ। इसमें स्पष्ट है कि मगण में तीनों वर्ण अर्थात् आदि, मध्य और अन्त के वर्ण गुरु या दीर्घ हैं और मगण का रूप S S S इस प्रकार है। इसी प्रकार और गणों को भी इसी सूत्र की सहायता से निकाला जा सकता है।

गण-कोष्टक

गण का नाम	रूप	उदाहरण
यगण	१ ५ ५	अत्रागमा
मगण	५ ५ ५	पुण्यागमा
भगण	५ १ १	नाग
नगण	१ १ १	कमज
जगण	१ ५ १	मगत
रगण	५ १ ५	सावनी
भगण	१ १ ५	रानी
नगण	५ ५ १	देगाइ

गणों के नाम वर्ष इनके गणों के बाद करने के लिए उक्त।

१. धार्मिक, दुसरा गण गणन दत्त है—

० अर्द्ध, प्रथम, अगम्य में, य, र, ना में अर्द्ध

५ अ. ना में गुण अर्द्ध, म, न गुण अर्द्ध

अगम्य -

अर्द्ध अगम्य अर्द्ध अगम्य

अगम्य अर्द्ध अर्द्ध अगम्य

० भगण में तीनों गुरु, नगण में तीनों लघु :
 भगण में धादि गुरु, नीके के प्रमानिए ।
 आदि लघु यगण में, मध्य गुरु जगण में ;
 मध्य जाके लघु होय, रगण सो जानिए ॥
 अन्त गुरु होय तां, सगण ताहि कहें कवि ;
 तगण में अन्त लघु, यों 'रत्नाल' मानिए ।
 प्रथम के चारि शुभ, दीजिए कविन आदि ;
 अन्तिम के चारि तजि, अशुभ यखानिए ॥
 गण-देवता-फल-काष्टक

गण	देवता	फल	शुभाशुभ
यगण	जल	आयु	शुभ
भगण	पृथ्वी	लक्ष्मी	"
भगण	चन्द्रमा	यज्ञ	"
भगण	भयं	मुख	"
जगण	सूर्य	वेग	अशुभ
रगण	अग्नि	दाह	"
रगण	वायु	विदेश	"
नगण	आकाश	मृत्यु	"

* यगण-यज्ञ, भगण-भयं, जगण-जल, रगण-रत्नाल, नगण-नक्षत्र ।

० यगण-यज्ञ, भगण-भयं, जगण-जल, रगण-रत्नाल, नगण-नक्षत्र ।

आज कल हमारे नवयुवक कवि प्रायः इस विचार से नहीं होते, किन्तु हमारा यह अनुभव है और हमने कई एक कवियों से भी इसका अनुमोदन प्राप्त किया है कि यह सत्य और शुद्ध है।

जिस प्रकार गलों के शुभाशुभ होने पर विचार किया है, उसी प्रकार बरों के शुभाशुभ होने पर भी विवेचना की है। आचार्यों ने सभी स्वरों को सदा शुभ माना है; और शुभा व्यञ्जनों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है:—

नोट:—कितनी कितनी आचार्य के मत से गणगण का विच प्रथम चरण के प्रारम्भ के दो अक्षरों में ही करना योग्य है। अक्षरों से दो गण बनते हैं, अस्तु कि २ दो गलों के साथ रहने से क्या फल होता है, यह हम नीचे देखेंगे:—

मगल + नगल = निश, है कै सिद्धि फल देव,

भगल + यगल = दास, दानि पहुँचावते ।

रगल + लगल = रिपु, होत शोकप्रद फल,

तगल + जगल ये = उदास, कहलावते ॥

निश-गल सिद्धि, दास, दास मिलि दानि करें,

अकल उदास, शत्रु काज विनसावते ।

सुकवि 'सरस' पंती गल की विवेचना है,

इन्दन को आदि में सुगल कवि लावते ॥

२

निश अरु दास मिलि विजय करवत हैं,

निश औ उदास आय दानि उपजावते ।

मित्र और शत्रु गण मिलि मित्र-नाश करें,
 दास भय मित्र, काम सिद्ध करवायते ॥
 दाग ओ उदाग मिति पीड़ा उपजायन है,
 दास और शत्रु गण मिलि कै हरायते ।
 मित्रों जो उदास भय मित्र, तो है रंघ फल,
 आरुके उदास, दास । दुख पहुँचायने ॥

१

मित्रन है जो री दुम्ह आदि में उदाग शत्रु,
 गण दुखकारी परिणाम निज जानिये ।
 शत्रु और मित्र गण मिलि देन शून्य फल,
 शुभ और दास में विषा का नाश मानिये ॥
 मित्रन है शत्रु ओ उदाग जोरि आदि मोहि,
 शत्रु उपजायन है, पेना दा समानिये ॥
 दागन 'दाग' करि दुम्हन की आदि मोहि,
 दास दास गणन में यो विचार जानिये ॥
 मायिक दुम्हन मोहि बग, दास गणागण दासु ।
 बग-दुम्ह में 'दाग' करि, यह विचार मोहि जेतु ॥

नोट — अनेक स्थान में गणों की गिनती प्रथम अक्षर की प्रणी है । अन्त में दो या एक अक्षर यदि बच जायें वे यदि जतु दूर हो जतु और यदि गुरु दूर हो गुरु माने जाते हैं ।

अनुन वरों में से पाँच वरों :—क, ह, र, य, ल (मधुरमय दा-दागः) को अन्तम अनुन और दृगित वर अर्ध दा-दाग की गीता दी गई है ।

‘ गणाक्षर-दोष-परिहार ’

अशुभ-गणों के किसी दूंद के आदि में अग्निषास्त्र रूप से आने पर उनको दाय पयं अशुभ-पान के परिहारार्थ ऐसा कहा गया है कि उन गणों के समक्ष ही जगद् देवता यात्री हों अथवा भद्र-यात्री हों तथा यदि दूंद में किसी देवता या देवी शक्ति आदि की स्तुति की गई है तो उसमें अशुभ गणों का पित्तार नहीं होता ।

० अ :—इसी प्रकार देवता याची अथवा मनुष्याची शक्ती
ये. आदि में यदि अशुभ वस्तु भी आवे तो भी वेद प्राप्त नहीं
होती ।

पः—यदि हमें अनिष्ट का कारण जानें तो यदि मैं अनुमति दूँ तो हमें उसे दूर करने में मदद मिलेगी। यदि हमें नहीं पता है कि हमें क्या करना चाहिए, तो हमें उसे करने में मदद मिलेगी। यदि हमें नहीं पता है कि हमें क्या करना चाहिए, तो हमें उसे करने में मदद मिलेगी।

उदाहरण

संस्कृत-विभागः

"प्रियः पतिः धीमनि ज्ञानिकुम् श्याम्,
कर्तव्याने समुपेय वदन्ति।"

(नाम ध्यान : आचार्य : प्रो.)

यहाँ प्रथम बात अलग होकर आती है, क्योंकि इसका संबंध मुख्य और बाह्य, बाह्य होता है, क्योंकि इसमें स्वतंत्रता स्वतंत्रता का एक स्वतंत्रता का संबंध है, इसलिए बाह्य का विचार हो जाता।

* ५८०० ५८२० ५८४० ५८६० ५८८० ५९०० ५९२० ५९४० ५९६० ५९८० ६०००

३ नवंबर १९५७

२:—वर्ण दोषः—

“रामहिं चितै रहे थकि लोचन”

—जो० तुलसीदास

यही रा अशुभ वर्ण है, किन्तु वह देवतावासी शत्रु है तथा दीर्घ है इमत्रिये गदोप नहीं, परन्तु दोषमुक्त है।

हमी प्रकार “हा ! रघुवीर दैय रघुगया।”

(२) लट कंध माया पंच थीम अनेक वर्ण सुमन घने।

(३) रे ! कवि पोष्य बेत सगमारी ॥

(४) मृगत रि होरे, दाऊ रङ्ग रम बेरे तही—

{ (१) मायीज प्रतीत कर छाई।

{ (२) मृता जा गकला है केमे जो बुझ देखा सुना कहीं।

उपयुक्त गद्य उदाहरणों में प्रथम वर्ण सभी दूषाकार हैं वे दोषमुक्त इमत्रिये हैं कि वे या तो देव-रत्नवन में हैं या वन में हैं, तथा शुभगण से सम्बन्ध रखते हैं।

नोट — छात्र यह कि शुभाशुभ गणों एवं दूषाकारों विचार मुक्त काण्ड में ही मिलेन वन में कर्मा आदिये। प्र काण्ड में वंश काण्ड के प्राग्मिक छंद या छन्दों में ही। विचार कर्मा उचित है और छात्र नहीं। प्र काण्ड में गद्य एवं शुभाशुभ गणों का विचार करना आवश्यक अतिव्याप्य है। प्रथम काण्ड के बीच में इनका विचार उचित है, जैसे—

(अ) मनहरी कविजन निवृत्त उपाई।

(ब) हरे मृति गणवि कस मला।

(ग) गद्ग मनस कम हृदय विचारी।

(द) भन्ने भवन तुम धायन दान्ता ॥ इत्यादि ॥

—रामायण

उक्त उदाहरणों के सभी प्रथम-वर्ग दन्धांतर हैं किन्तु वे उन मध्य-वर्ग की मध्यगत दन्धों में हैं जो देधाभिर्देय के मन्वन्ध में लिखी गई हैं। अतः वे सब धर्त तथा इनके दोष उपेक्षणीय हैं।

तुक

तुका—एक प्रसार का यह विनिर संयानुमान है, जिसमें आहृति, स्वर एवं व्यञ्जन-साम्य से दन्धों के चरों के अन्त में ही रक्षणी जाती है।

संयानुमान और तुक में यह अन्तर है कि संयानुमान छंद है वहीं और परम्परा दन्धों में आहृति जाता है। किन्तु तुक परम्परागत दन्धों में ही आहृति का समावेश करता है, अतः संयानुमान का क्षेत्र अधिक व्यापक और विस्तृत है, किन्तु तुक का महोक्त और निर्देशनीमात्र है।

तुक में दन्धों में एक निश्चित व्यवस्था और मधुरता आ जाती है। द्वितीयाभा में एकका अकार अकार एवं अन्तर है। ही संज्ञा में एर के विपरीत अनुबन्ध-वर्गी ही का अनुबन्ध है, यद्यपि द्वितीयाभा में भी अनुबन्ध-वर्गिका मिलती है किन्तु वह कभी एर में नहीं होती व समाप्त है। द्वितीयाभा की यह अन्तरी एक निर्देशनी है, जिसका अनुबन्ध बहु काल से भी किया है।

“दास” ही में इनके निर्देशन का है, जिसके सुख स्वर में एर मोदि है वी है —

तुक के सुख मोदि है—

१— २००० तुक

२— २००० तुक

३— २००० तुक

२:— स्वर-भोजितः—जहाँ तुक के दोहन अन्तिम स्वरों में हो लाग्य हो, और व्यञ्जनों में वैश्य रहे ।

नोटः—हिन्दी में तो इस तुक को न्यूनता ही है, किन्तु उर्दू में इसकी बाहुल्यता ही पाई जाती है ।

३:— दुर्मितः—जिसमें चरनों के दोहन मध्य में अन्तिम चरों में हो लाग्य रहता है, अर्थात् चरदान्त के दोहन एक ही पदा चरों मिलते हैं ।

नोटः—निरुध्द या अधम-तुकः—उक्त दोनों प्रकार के तुकों में यह अधिक निराशोक्ति का होता है इसमें चरार्थवृत्ति या चर-भग्न का बोध भी निश्चय नहीं रहता ।

इसके भी तीन रूप होते हैं—

१:—अनिल-तुमिलः—जहाँ ह्रस्व के कुछ चरनों में तो तुक मिलता हो किन्तु कुछ में न मिलता हो ।

२:— अर्धनिष्कामिताः—जिन तुक के अर्धे स्वर या अर्धे चरान्त भागमें न मिलते हैं । या चरों मिलते हो या न मिलते हैं ।

३:— अन्ध मय अमिलः—जिसमें तुक के अर्धे स्वर या भागमें न मिलते हो । चरों चरों मिलते हो या न मिलते हैं ।

इसके अर्धनिष्ठ निम्न मुख्य दोर वर्गों में बाँट सकते हैं—

(१) अर्धकः—इसमें अर्धे स्वरों को चरों भागमें न मिलते हैं ।

(२) निरर्थकः—जहाँ अर्धे स्वरों को चरों भागमें न मिलते हैं, और दोहन तुक मिलने के लिए हो, अन्ध

काल्हि गई घृषभान घरें अरु ह्यो तेरो बात चलाई ।
सुर श्याम अषगुन जखि तोरे लौटत वाग्दहन नाई ॥

श्याम... .." सुरदास "

गाइये गलपति जगवन्दन ।

गङ्गुर सुघन भवानी नन्दन ।

मोदक प्रिय मुद मङ्गलदाता ।

विद्या-न्यायिध बुद्धि-विधाता ।

मांगत तुलसीदास कर जोरे ।

यसहु राम-सिय मानस मोरे ॥

—“ तुलसी दास ”

इसी प्रकार मीरा बाई एव अन्य कृष्ण-भक्त कवियों के पद शहरणार्थ देखे जा सकते हैं । इन्हीं को मजन भी कहते हैं ।

गीत

इसमें चार पद, दो छन्दों से बनाये जाते हैं—जिनमें से दो द उल्लास या रोला के और दो पद दोहे के रहते हैं और अन्त में स मात्राएँ टोक के रूप में रहती हैं : जैसे :—

सिद्धि धीयुत जाग लिखी गोकुल तैं प्यारे !

राम राम बंनने श्याम ! गोपाल ! मुरारे ॥

कृपा रावरी सों इवै सब विधि सय आनन्द ।

रहै ठारिका में सदा सकुणल हे वृजवन्द !

मनारै राधिका ॥

“ सरस ”

(चाँद के पचाहु से)

। संगीत यद्यपि पाण्डव से दृष्ट्युद्ध में भी पाण्डव को संगीत से
व्यस्य ही सहायता लेनी पड़ती है ।

हृदय में जो एक प्रकार का मंजीरात्मक लयपूर्ण वादप्रवाह
जाता है उसे हृदय की गति कहते हैं ।

[illegible]

काम्य काम्य भक्ति दम्भ बन्धन ।

ଅନ୍ୟ ଗୋଟିଏ କବିତା ଲେଖିବା ପାଇଁ ।

[illegible]

सुखी पात्र दानु पात्र कानुपात्र ।

दण्ड बहिः शतं दण्डं दण्डः ।

[illegible][illegible]

मेरा पक्षी मनोरञ्जक था, और मनोरञ्जक प्रतीत होता है, और अन्त में अन्त में ही वह मरीचे से न पक जाने से अन्त में अन्त में मरने से नहीं बचता ।

हृन्द या वृत्ति

परिभाषा-प्रकरण

तत्त्वः—मद्य वा यद् विविध रूप है, जिसमें मनुष्यात्मक (मानव) पक्ष, दिग्विष्ट गति, सात्वत या ज्ञेय है; और जिसमें मादृष्टोक्त पक्षों की नियंत्रित गतिना के साथ विविध-नियमों के आधार पर यद् विविध वा संशुद्धन नियमित व्यवस्था और विधान के अन्तर्गत रहता है।

आइतक—आपका बयाना साहित्य दि. २२ में प्रकाशित किया
गया है। इसका दूसरा अंक प्रकाश के समय में ही प्रकाशित हो
वेगा।

[illegible]

बिना विचार के, नही हो पाये.

ה'תשנ"ב

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

२:—चतुष्पदी-छन्दः—इसके अन्तर्गत चौपाई, कवित्त, सर्वप्या, रंगीतिका इत्यादि छन्द आती हैं।

३:—पद्य-छन्दः—इसमें छापय, कुरुटलियादि आती हैं। इसी प्रकार अष्ट-पदी द्वादश-पदी आदि भेद भी छन्दों के लिये गये हैं।

यति:—जहाँ पर छन्द के पदों की गति विशेष नियमों में बंधित हो कर ठहराई जाती है, वहाँ यति मानी गई है, अर्थात् गतियों के निर्दिष्ट या निश्चित गति के ठहराव (गतिस्थिर्य) को यति कहते हैं। इसी के दूसरे नाम विराम या विधाम भी हैं।

नोट:—विराम एक प्रकार का चिन्ह भी होता है जिसे प्रेजों में कामा Comm. कहते हैं। इसके मुख्य तीन भेद हैं, पद-विराम, अर्ध-विराम और पूर्ण-विराम। इनके चिन्ह ये हैं:—

• • • या । ॥

यति या विराम पर जितनी देर में १ एक कहा जा सकता है, उतनी ही देर तक ठहरना चाहिये।

गति:—छन्द की नियंत्रित धारावाहिकता को गति कहते हैं। इसी गति पर छन्द की संगीतान्तरक मञ्जरञ्जकता और ध्वनि ती सुखद माधुर्य निर्भर है।

नोट:—पदों की संख्यानुसार छन्दों के उक्त भेद जो हमने दिखाये हैं उनसे यह स्पष्ट होगा कि छन्दों में पदों या गतियों की संख्या सम रहती है; किन्तु इसके साथ यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि इनकी संख्या विषम भी होनी और हो सकती है, जैसे:— पद, या एक प्रकार के गाने योग्य भजन, यथा मूरदान और जितनी दास जी के पद तथा गीत, ईने:—गन्द दाम एत अमर तिन को विषम छन्दों में। इनमें सङ्गित मन्दन्धी दादरा आदि के

महाभारत महाभारत के नाम में होना है और वह प्रयोग हम
कामगारी या महाभारत कहना है। विचारने को पान है कि भा
और कविता के बिना वह एक बर्तन प्रकार की कविता या व
कविता की उपाधि के लिए आध्यात्मिक, एवं प्रधान कविता में :
रचना की है।

मात्राओं और वर्णों की गणना या व्यवस्था के अनुसार है
वा प्रकार के होते हैं :—

१.—मात्रिक गणना :—प्रत्येक मात्राओं की गणना और इन
व्यवस्था का भाव रचना जाता है, वर्णों की गणना और इन
उपन्यास होती है।

२.—वर्णिक गणना :—वे वर्णों वर्णिक व्यवस्था है कि
मात्राओं की गणना या विचार में प्रत्येक वर्ण (वर्ण)।
और वर्णों की व्यवस्था का इनमें सर्वत्र विचार्य जाति कि
होता है। विचार्यता वह गणना और व्यवस्था का विचार कि
होता है।

इस वर्णों प्रकार के वर्णों के लिए तीन तीन उपदेश दिये हैं।

१.—गणना :—प्रत्येक मात्राओं व्यवस्था वर्णों की गणना कि
वर्णों के गणना होती है।

२.—वर्णिक गणना :—वे वर्णों के लिए उपदेश दिये हैं। वर्णिक
वर्णों के लिए उपदेश दिये हैं। वर्णों के लिए उपदेश दिये हैं। वर्णों के लिए उपदेश दिये हैं।

३.—वर्णिक गणना :—वे वर्णों के लिए उपदेश दिये हैं। वर्णिक
वर्णों के लिए उपदेश दिये हैं। वर्णों के लिए उपदेश दिये हैं। वर्णों के लिए उपदेश दिये हैं।

कार के (समान वर्ण या मात्रा वाले) होते हैं इत्तीलिय इत्ते
अर्थ-सम कहते हैं ।

३:— विषमः—वे छन्दों जो सम और अर्ध-सम न होकर पारों
पारों में वैभिन्न या वैषम्य रखती हैं ।

निष्कर्ष रूप में यों कह सकते हैं:—

सब पद सम में सम रहत, विषम विषम में जान ।

इन दोहुन तैं निम्न जो, ताहि अर्ध-सम मान ॥

—रसाज-पिङ्गल

सम-छन्दों के सिर दो मुख्य भेद किये गये हैं:—

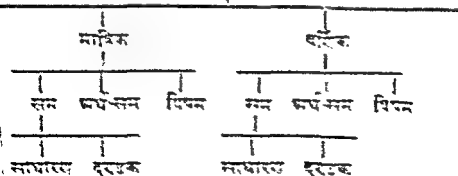
१:— दृष्टक

२:— साधारण

नोट—चूँकि दृष्टक और साधारण, मात्रिक और वलिक
सम छन्दों में अपने पृथक् पृथक् रूप एवं मात्राओं और वर्णों की
संख्या एवं उनके विधान निम्न निम्न रखते हैं, इसलिये इनको
स्थापक परिभाषाएँ हम नहीं दे रहे हैं । इनके विभिन्न लक्षण आगे
देखिये ।

छन्द-कोटक:

छन्द



मात्रिक-सम-छन्द-प्रकरण

नोट:—ग्रन्थार रीत्यानुसार छन्दों की संख्या असंख्य हो सकती है, अस्तु हम यहाँ मात्रिक-समास्तर्गत साधारण छन्दों के कुछ उदाहरण जो विशेषतया अन्यधिक रूप में प्रचलित पाये जाते हैं दे रहे हैं:—

१—चौपाई

२११ २१ २१ ११२२

ईश्वर अंश ओष अविनाशी । १६ मात्रायें

२११ १११ १११ ११ २२

चेतन भमल सकल सुख राशी ॥ १६ मा

२ २२ ११ १११ १२२

सो माया यज्ञ मयड गोसाई । १६ मात्रायें

१११ २१ २११ २ २२

बँधेड कीट मकंद की नाई ॥ १६ मात्रायें

“रामायण”

चौपाई :—इस छन्द के प्रत्येक चरण में १६ मात्रायें होती

नोट:—इस छन्द की रचना में गति पर विशेष ध्यान चाहिए । इसके चरण के अन्त में ‘अमल’ (। ५।) वा ‘त’ (५५।) कदापि न रखना चाहिए । यद्यपि ऐसा कोई नियम नहीं है परन्तु तो भी चरणान्त में दो गुरु (५५) रखने से छन्द की गति अच्छी हो जाती है और पढ़ने में भी मधुर पड़ती है । हिन्दी-साहित्य में तुलसीदास की चौपायाँ वर्य प्रसिद्ध हैं ।

२—रोला

रोला :—इस मात्रिक-सम-द्वन्द्व में ११ और १३ मात्राओं पर विराम दे कर कुल २३ मात्रायें रखनी चाहिये, इसे काव्य द्वन्द्व ही कहते हैं। किसी किसी आचार्य का मत है कि इस द्वन्द्व के चरणान्त के दो गुरु पद होने चाहिये, किन्तु यह नियम सर्वत्र नहीं पाया जाता। जैसे :—

आके प्रति पद मादि, कला चाविस गनि राखें ।

रोला अथवा काव्य, द्वन्द्व ताकह कवि भाखें ॥

नियम न लघु गुरु फेर, रखें अन्त गुरु दोई ।

ग्यारह पर विधाम, किये प्रति उत्तम होई ॥

३—हरिणीतिका

हरिणीतिका :—इस द्वन्द्व में ११ और १२ के विराम से प्रत्येक रण में २० मात्रायें होती हैं, और चरणान्त में एक लघु और ४ गुरु का होना आवश्यक है। इसकी गति ठीक रखने के १९ प्रत्येक चरण की पाँचवीं, बारहवीं, उन्नीसवीं तथा द्वाविं-वीं मात्रायें लघु रखनी चाहिये; नहीं तो द्वन्द्व की गति बिगड़ती है। किसी किसी के मत से इसमें ७ सात मात्राओं पर राम देने रहना चाहिये और १४ चौदह मात्राओं पर दो मुख्य राम दति के लिये रहना चाहिये। इस प्रकार केवल ४ धार 'तिणीतिका' कहने या रखने से इस द्वन्द्व का एक चरण जाता है। जैसे—हरिणीतिका, हरिणीतिका, हरिणीतिका, हरि-
तेका ।

यथा :—

ये शारिका परिचारिका कति, राजधी कल्याणदी ।

अपराध दुनिबो बोलि पठ्य, बहुत ही दीन्दी दई ।

पुनि मानुहुल भूपन सकल स्तन, मान विधि समधी किये ।

कहि अण नहि चिनती परस्पर, येम
“तुलसी”

नोटः—इस छंद के तीसरे चरण में “स्तन” तक १६ पुरी होनी हैं, और “मान” शब्द कट कर उसकी मात्रा में गिनती अन्त वाली १२ मात्राओं में होती है, क्योंकि ‘स्तन’ ‘मान’ के बीच में विराम पड़ता है। ऐसा न होना चाहिये। (ऐसे दो दोष को व्यति-भङ्ग-दोष कहते हैं) । किन्तु ज्ञान है कि कवि ने १४ चौदह मात्राओं पर विराम वहाँ रख कर छंद के उपनियम का अनुसरण किया है।

४—तोमर

तोमरः—इस मात्रिक-सम-छन्द के प्रत्येक चरण में १२ पं होती हैं और अन्त में एक गुरु, और लघु-वर्ण का होना चाह है यथाः—

तय चले वाय कराल । फुडूरत अनु थु ग्वाल ।
कौथी समर औराम । चल विशिष निशित निकाम ।

५—सार

सार —१६ और १२ के विराम से इस छन्द के प्रत्येक में २८ मात्राएँ होनी चाहिये । इसके चरणान्त में दो गुरु-व होना आवश्यक है । यथाः—

ज्ञान समथ उटि अनक-नन्दिनी, विभुवन नाथ जग
उठा नाथ ! अथ मोर भयो है, भूपति द्वार बुलाये ॥

* शब्दों के दोषों का :—वलि-भङ्ग, वलि-भङ्ग, छन्द-भङ्ग और इत्यादि दोषों का विस्तृत वर्णन हम आगे करेंगे ।

कमल-नयन-मुख निरखि राम को, ध्यान-सिंधु समाधि ।
कनक-कलस सरजू जल झारी, विप्रन दान करावै ॥

नोट:—देखिये उक्त 'हरिगीतिका' में भी २८ मात्राएँ होती हैं, और इसमें भी उतनी ही मात्राएँ हैं, किन्तु उनकी व्यवस्था में भेद होने से छंद की गति पूर्णतया बदल गई है और उसका दूसरा ही रूप हो गया है ।

६—कुण्डल

कुण्डल:—१२ और १० के विराम से इस छन्द के प्रत्येक चरण में २२ मात्राएँ होनी चाहिये । इसके चरणान्त में दो गुरु-धर्माँ का होना अवश्य है । यथा:—

मेरे मन राम नाम, दूसरा न कोई ।
सन्तन दिग बैठि बैठि, लोक लाज खोई ॥
अथ तो बात फैल गई, जानत सब कोई ।
असुषन जल सींचि सींचि, प्रेम धेलि बोई ॥

नोट:—प्रभाती कुण्डल का वह रूप है जिसके अन्त में एक ही गुरु होता है, इसे उड़ियान भी कहते हैं । यथा:—

दुमुकि चलत रामचन्द्र, बाजत पैत्रनियो ।
धाय मातु गोद लेत, दशरथ की रनियो ॥

७—रूप-माला

रूपमाला:—इस छन्द के प्रत्येक चरण में २४ मात्राएँ होनी चाहिए, एवं १४ और १० मात्राओं पर विराम देना और अन्त में एक गुरु और एक लघु-धर्माँ का रखना आवश्यक है । यथा:—

यज्ञ-भण्डल में हुते, रघुनाथ जू तेहि काल ।
चर्म अङ्ग कुरङ्ग को, शुभ स्वर्ण की सँग बाल ॥

२:—राम ही की भक्ति में, अपनी मलाई जानिये ।

१०—चवर्पया

चवर्पया:—ग्रन्थेक चरण में १०, ८ व १२ के विराम से ३० मात्रायेँ होनी चाहियेँ, अन्त में एक सगर और एक गुरु का होना आवश्यक है—यथा:—

मे प्रगट हृपाला, दौन दयाला,
कौशल्या-हितकारी ।

हर्षित महतारी मुनि मन हारी,
अद्भुत रूप निहारी ॥

लोचन अनिरामा, तनुषनश्यामा,
निज'आयुध भुज चारी ।

भूपन वनमाला, नयन विमाला,
शोभासिंधु खरारी ॥

नोट:—मात्रिक समान्तर्गत दण्डक छन्द भी होते हैं, परन्तु वे अधिक प्रचलित नहीं हैं, अतः उनके उदाहरण हम यहाँ पर नहीं दे रहे हैं ।

मात्रिक अर्ध-सम-छन्दों का प्रकरण

जित मात्रिक छन्द के प्रधान चरण की मात्रायेँ तीसरे चरण की मात्राओं के और दूसरे चरण की मात्रायेँ चौथे चरण की मात्राओं के बराबर हो उसे मात्रिक-अर्ध-सम-छन्द कहते हैं । इस प्रकार के छन्द बहुधा दो ही पंक्तियों में लिखे जाते हैं अर्थात् पहिला और दूसरा चरण एक पंक्ति में और तीसरा तथा चौथा चरण दूसरी पंक्ति में लिखते हैं । यहाँ हम कुछ अति प्रसिद्ध मात्रिक-अर्ध-सम-छन्दों के ही उदाहरण दे रहे हैं:—

यः—छर्मा हलाहल मद भरे, ज्वरे-उद्यम-रतनार ।
जिदन, मरन, मुक्ति मुक्ति परन, जेहि निनपन पन धार ॥

३—सोरठा

सोरठा :—इसके पहिले छोर सोमरे चरन में ११ छोर दूसरे
धा चौधे चरन में १३ माशायें होती हैं । छपाई दोहा के चरनों
: विपरीत इसके चरन होते हैं । यथा :—

जिहि मुनिगत तिथि होय, गलनादक करियर वदन ।
करहु अतुष्ट मोय, दुष्टि गगि हन गुन मदन ॥

४—उह्लाता

उह्लाता :—पहिले छोर तीसरे चरन में छोर दूसरे तथा चौधे
चरन में १३ माशायें होती हैं । जैसे :—

हे गरुड दापिनी देवि ! तू करती सब का प्राण है ।

हे मातृ भूमि ! संतान हन, तू जननी, तू प्राण है ॥

श्रुतिरारि श्लोचन दिग यमन, विर भोजन भय भय हरण ।

कह तुलसिदास सेवत सुलभ, जिय जिय जिय गह्वर गरुड ॥

(द्वितीय)

नोट :—यद्यपि इस छन्द में २८ माशायें भी मानते हैं तथापि
प्रायः कवि इतने २६ माशायें भी रखते हैं और इतने १३, १३
माशाओं पर यति (विराम) देते हैं । दोनों नियम ठीक हैं, किन्तु
हमारी सम्मति में २८ मात्रा वाला उह्लाता-छन्द अधिक सरल-
सुन्दर और मनोहर होता है ।

५—गविरा

गविरा :—इसके विषम-चरनों में १६ और सम चरनों में १४
माशायें होती हैं और छन्द में दो गुरु-वर्त होते हैं । जैसे :—

हरिहर भगवत सुन्दर स्वामी, सब के घट को मेरे मन की कीजे पुरी, इतनी हरि मेरी

मात्रिक-विषम-छन्दों का प्रकरण

जो छन्द मात्रिक-सम वा मात्रिक-अर्ध-सम है, मात्रिक-विषम-छन्द है, अर्थात् मात्रिक-विषम-छन्द उन्हे जिसके चारो चरणों की मात्रा-व्यवस्था अथवा नियम मिलते हैं वा जिसके सम सम और विषम विषम चरण न मिले अथवा सम सम मिलते हों, परन्तु विषम विषम न मिले तथाच इसी के प्रतिकूल विषम-विषम मिलते हैं। और सम मिलते हैं।

नोटः—चार चरणों से कम तथा चार चरणों से अधिक जिन छन्दों में पाये जायें उन्हें विषम छन्द जानना। ऐसे छन्दों में जो बहुत प्रचलित हैं उन्हें ही हम वे रहे हैं।

१—कुण्डलिया

कुण्डलियाः—आदि में एक दोहा, उसके पश्चात् दस छन्द जोड़कर ६ पदों (चरणों) का यह छन्द बनाना चाहि का अन्तिम-चरण, दोहा का प्रथम चरणार्द्ध होना है, और के अन्तिम चरण के कुछ अन्तिम-अक्षर वा अन्त पदों होने जो दोहे के आदि में हैं, और दोहा के अन्तिम चरण में मात्राएँ रहें। जैसेः—

आली घन घरती हरी, ताहि न लीजे सङ्ग ।

जो मँग राखे हो बने, नौ करि रामु अप्प

नौ करि रामु अप्प, फेरि फरक मो न कीजे ।

कपट रूप दिखराह, ताहि को मन हर लीजे

कह 'गिरधर कविराय, ' सुटक जैई नहि ताकी ।

कोटि दिलाता, देहु, हरो धन धरती डाकी ॥

२—छप्पय

छप्पय—इस छन्द की आदि में रोला के चार पद चौबीस
गीत भाषाओं वाले रखकर तदुपरान्त उद्दाला के दो पद और
ना बाँधिये ।

नोट—छप्पय में जो उद्दाला-छन्द रफ़्का जाय उसके दूसरे
चौथे चरण के अन्त में यदि 'नगर' (।।।) रफ़्का
जाय तो छन्द की गति अधिक रोचक बन पड़ती है ।

यथा :—

अ—रोला को धरि प्रथम बहुरि उद्दाला राखैं ।

ताको छप्पय-छन्द नाम सबहो कवि भाखैं ॥

लघु गुरु नियम न कोइ, कहैं कविराई कोइ ।

कोई रोला-अन्त माँहि, राखैं गुरु दोइ ॥

उद्दाला के विषय मँह, कोइ कवि पेंतो कहँहि ।

दूजे चौथे चरण में अन्त बरद, अथ लघु रहँहि ॥

क—नीख निखिल निसर्ग, तीव्र तन तोन तने धे ।

निबिड़ निर्गुण नितान्त, नेत्र निस्तार बने धे ॥

काला काला सखन सखन धा गगन गरजता ।

प्रखर प्रमंजन पूर्ण, बाहिर्मननार्थ बरजता ॥

अविरत होती कृति धी, सृष्टि दृष्टि आती न धी ।

भूरि मयानकता नरी, भूनि नजी भाती न धी ॥

x

x

x

तरनि तनूजा टट तनाल तरवर बहु क्षये ।

लुके लज लीं जल पर तन हिन मनहु नुहाये ॥

सब में करि नेह भजौ रघुनन्दन राजन हाँस्क माल हिये ।
नव नील यधू फल पीत भँगा भलकै अलकै घुँघरारि लिये ॥
अरविन्द समान मुरूप मरन्द अनन्दिन लाचन भृङ्ग पिये ।
दिय में न यस्यो अस दुर्मिल बालक नौ जग में फल कौन जिये ॥

नोटः—सर्पया छंदों के और भी कई भेद हैं: यथा:—

छाट भगण की किरौट, तथा छाट सगला और एक गुरु की
सुन्दरी (द्वितीय) होती है। इनके अतिरिक्त सान भगण और अन्न
में गुरु और लघु की 'चकोर', सान जगण और अन्न में लघु और
गुरु की 'सुमुखी', सान जगण और अन्न में यगण की 'धाम',
छाट भगण और एक लघु की "अरविन्द", छाट जगण और एक
लघु की 'लपंगलता', छाट भगण की 'सुख' और छाट जगण
की 'मुक्तहरा' सर्पया छंद और भी होती हैं।

वर्णिक समान्तर्गत दशदक-प्रकरण

जिस पद्य के प्रत्येक चरण में वर्ण संख्या २६ से अधिक हो
उसे दशदक वृत्ति कहते हैं। इसके भी दो भेद हैं (१) गण-बद्ध (२)
मुक्तक।

गण-बद्ध-दशदकः—यह है जिसके वर्णों की संख्या गणों के
अनुसार नियमित हो।

मुक्तकः—यह दशदक है जिसमें वर्णों की संख्या तो नियत
हो, किन्तु गणों का बन्धन न हो। ऐसे मुक्तकों में ने हिन्दी में
"मनहरण" बहुत प्रचलित हैं। इसी की घनाक्षरी या कवित्त भी
कहते हैं।

नोटः—वर्णिक वृत्तियों में जो छंद अक्षरों की गिनती या "कहाँ
कहाँ गुरु लघु के नियम" से बनाये जाते हैं वे भी मुक्तक कह-
लाते हैं।

स० दि०—४

मात्रिक-प्रश्नार्थ

मात्राय गुरु आर ननु शब्दा २ यह विज्ञान ही इस प्रकार है (१. ५ इन विज्ञान के मा विषय में लिखा जा चुका है) अथ यदा इत्यादि के मा आर ननु आ आर ननु गते बाध प्रमाण विषय में हम मूल्य और मूल्य रूप में कल्प दण्डों पर विद्युत विद्युत गहन ननु अस्ति है ।

मात्रा प्रश्नार्थ की रीति यह है कि यदि मात्राओं का संख्या मय न हो प्रथम पंक्ति में उनमें हों गुरु विज्ञान लिखा जिनमें से मात्राओं का न हो है, किन्तु यदि मूल्य विषय में हो तो हों। उदा. में अथवा विज्ञान में पंक्ति का प्रारम्भ होता है, मूल्य से या आदि में, ननु-विज्ञान मूल्य (फार्मिक विषय-मात्राओं में से का विचार करने हुए एक मात्रा सदैव बन रहेंगी) फिर ही तो गुरु विज्ञान को उसके नीचे क्षुद्र लिखकर पंक्ति की ओर ही सभी विज्ञान उसी प्रकार उतार लें, किन्तु ध्यान रहे कि मा का मूल्य कदापि न घटने पाये । दूसरी पंक्ति में, मा या न हो मात्राओं अथवा घटेंगी, इसलिये ध्यान भोग में गुरु का दायाँ उसकी पूर्ति करो । यदि एक मात्रा शेष रहती है आदि में ननु विज्ञान ही रखो जैसे:—सात मात्राओं का कल्प है, यह संख्या विषय है इसलिये मय में शेष मात्रा शेष दायाँ विज्ञान लिखे जायेंगे, अथ नक कि मूल्य पूर्व पंक्ति ।

एक मात्रा) + ५ (दो मात्रा) + ५ ५ (दो मात्राओं का विज्ञान कर ५ मात्राओं) मय मित्राकर ७ मात्राओं की ।
१००० विज्ञानों लिखिये :—

१००० ५५७ मात्राओं ।

यदि कोई संख्या न घट सकती हो तो उसे छोड़कर उत्तकी पूर्व-
वर्ती अन्य संख्या लो। घटाने के पश्चात् जोय रही संख्या में ही
पूर्ववर्ती संख्या घटाना चाहिए। जब घटाते घटाते शून्य बचे तब
इस क्रिया को बन्द कर देना चाहिये और यह देखना चाहिए कि
कौन कौन से अङ्क घटे हैं। यह ज्ञान होने पर उन्हीं अङ्कों के ऊपर
प्रथम पंक्ति में (सब लघु बिन्दु वाले प्रस्तार के अन्तिम रूप में)
लघु-बिन्दुओं को उनके दक्षिण भाग वाले लघु बिन्दुओं से जोड़ कर
गुरु बिन्दु बना लो और जोय बिन्दुओं के त्यां ही उतार लो,
वस्तु यही उत्तर का अर्माष्ट रूप होगा।

प्र०:—५ मात्राओं के प्रस्तार में १३वां रूप क्या है ?

उत्तर:— १ १ १ १ १ १ (प्रस्तार का अन्तिम रूप)

१, २, ३, ४, ५, १३, २१ (५ मात्राओं की सूची)

प्रश्न में १३ वां रूप माँगा गया है, अतः उसे (१३ को) २१ में घटाया
($२१ - १३ = ८$) आठ बचा। इस आठ में से २१ के पूर्ववर्ती
१३ को घटाते हैं तो वह नहीं घटता, इसलिए उसे छोड़ कर उत्तके
पूर्ववर्ती दूसरे अङ्क (१३) को लेकर फिर उसी प्रकार घटाते हैं तो
शून्य बचता है। वस्तु यही पर यह क्रिया समाप्त होती है और हम
देखने हैं कि घटाने वाला अङ्क ८ है इसलिए उत्तर दो पंक्तियों में
सूची में प्राप्त प्रस्तार-संख्या-सूचक दूसरी पंक्ति के ८ के अङ्क के
ऊपर वाले लघु बिन्दु को उत्तके दाहिनी ओर के लघु बिन्दु से
मिलाकर एक दीर्घ बिन्दु बनाया और जोय बिन्दुओं के त्यां
र लिए, तो अर्माष्ट रूप इस प्रकार मिला:—

१ १ १ १ १ १

१, २, ३, ४, ५, १३, २१

१ १ १ १ ५ १

जो प्रकार उन संख्यानुसार ७ वर्णों के प्रसार का १ ही रूप रह हुआ—

५५१५

नोट:—प्रसार के रूपों का गुणनामक दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक प्रसार में, यह कितने ही वर्णों का योग हो, उसके विषय रूप अपने आदि के भागों में समानता रखते हैं। वैसे वार वर्ण वाले प्रसार के ३, ५, ७, ९ और ११ के प्रारंभ रूप। इसी प्रकार हम संख्याओं के रूपों में भी जानना चाहते हैं।

यह ध्यान में रखने की बात है कि धार्मिक-प्रसार के सभी रूपों में वर्णों की संख्या समान हो सकती, किन्तु माथिक-प्रसार में सर्वे एवं सर्वत्र ऐसा न होगा। उसमें बसल प्रसार के अन्तिम रूप में ही जहाँ सभी वर्ण लगे रहेंगे, माथी की नियत संख्या में ही हो निर्देश है।

उद्दिष्ट

निम्न वर्णों के प्रसार में दिया हुआ रूप कौन स्थान रखता है? यह बतलाना ही उद्दिष्ट का रूप देना है। अर्थात् प्रसार का रूप क्या है दिया गया और यह पृष्टा गया कि यह कितने वर्णों के प्रसार का कौन सा रूप है—इस प्रश्न का उत्तर देना ही उद्दिष्ट कहा जाता है।

नोट की संहिता:—दिये हुए रूप को निकाल उससे प्रत्येक लक्ष के नीचे (गुण और लघु प्रत्येक चिह्न के तले) एक से एक कर के द्विगुण-अर्द्ध निगते जाओ, इस प्रकार लिख जाने लघु चिह्नों के नीचे धाने प्रश्नों को जोड़कर योग में एक और देओ। इस प्रकार प्राप्त हुई संख्या अर्थात् संख्या होगी।

ऊपर के चित्रसे स्पष्ट है कि चक्र के बायें और दाहिने ओर के ड, न, ल, और ड, और ओ, फ, त, और ठ नामक कोष्ठकों में नव से ऊपर के अ और इ कोष्ठकों के समान १ ही १ के अङ्क लिखे गये हैं। फिर नियमानुसार द्वितीय पंक्ति के ए कोष्ठक में उसके ऊपर के अ और इ कोष्ठकों के अङ्कों का योग-फल जो $१+१=२$ होता है रखा गया है। इसी प्रकार तृती पंक्ति के द और य नामी कोष्ठों में उनके ऊपर के ड और ए कोष्ठकों के अङ्कों का योग-फल जो सं० (३) होता है दिया गया है और इसी प्रकार उक्त रीत्यानुकूल दिया आगे भी की गई है।

इसी प्रकार किसी भी संख्या का मेर बन सकता है। उदाहरण के लिए हम ६ षट्ठों का मेर और दे रहे हैं।

		१		१		
		१	२	१		
		१	३	३	१	
		१	६	६	६	१
	१	५	१०	१०	५	१
१	६	१५	२०	१५	६	१

एक दोनो मेर चक्रों का मिलान करने से यह स्पष्ट हो जायगा कि ६ षट्ठों का मेर में ऊपर की ५ पंक्तियाँ ५ षट्ठों के मेर की पंक्तियों के समान ही हैं, इससे यह ज्ञान होता है कि न्यूनाधिक षट्ठों के षट्ठों की भाँति, जिनमें बाईं ओर से मेर समान होते हैं वे भी ऊपर की पंक्तियाँ समान रहती हैं।

चेष्टा—ध्यान रखना चाहिये कि बड़ी संख्या के मेर में उमने न्यून संख्या के सभी मेर सम्मिलित रहते हैं—जैसे यहाँ ६ षट्ठों के मेर में १, ४, ३ आदि षट्ठों के मेर ऊपर की पंक्तियों में सम्मिलित हैं।

इन पंक्तियों में जो अक्षर लिखे गये हैं उनमें यह ज्ञात है कि उतने वर्णों के प्रस्तार में इतने भेद होते हैं, और चतुर्गुण, त्रिगुण, द्विगुण और एक गुरु एवं सव लघु वर्ण वाले कितने होते हैं। जैसे :—ऊपर के २ वर्णों के मेष में मध्यमे या नीचे वाली पंक्ति के अक्षरों का जोड़ने से प्रस्तार के संख्या जो ३२ है ज्ञात होती है। तथा यह भी ज्ञात होता है। भेदों में से एक भेद में पंचा गुरु और एक में पञ्चा लघु वर्ण हैं (वाले कोष्ठों में यही ज्ञात होना है) और दूसरे कोष्ठ चार गुरु और एक लघु वाले २ भेद होते हैं फिर ३२ कोष्ठ के सार १० भेदों में ३ गुरु और २ लघु वाले भेद होते हैं। ४ वे के अनुसार २ गुरु और ३ लघु वाले १० भेद होते हैं। ५ में अनुसार ४ भेद ऐसे होते हैं जिनमें से प्रत्येक में एक गुरु और लघु होते हैं।

नोट:—मेष में चार और से ही सदा चलता चाहिये और से नीचे की पंक्ति में चार और के मध्य से प्रथम कोष्ठक में १ का अक्षर रहेगा, प्रस्तार के उम भेद का सूचक समझना जिनमें सभी वर्ण जिनकी निश्चित संख्या का प्रस्तार भेद जा रहा है, गुरु होंगे।

अब उम कोष्ठक में दाहिनी ओर चने और गुरु वर्णों संख्या में एक २ की कमी और लघु वर्णों की संख्या में एक की वृद्धि करने जायें, यहाँ तक कि पंक्ति के दाहिनी ओर मध्य में अन्तिम कोष्ठक का जिनमें १ का अक्षर रहेगा उम भेद सूचक समझें जिनमें सभी वर्ण लघु रहेंगे।

कितने ही वर्णों के प्रस्तार में किसी निश्चित संख्या में वाले गुरु और लघु वर्णों की संख्या जानने के लिए बिना एक बनाये ही निम्न नियम का काम में जाना चाहिये। नियम—

निम्न पंक्तियों के मध्य की पंक्ति बनानी हो, उतनी ही संख्या तक दोनों ओर से प्रारम्भ करके १ से आरम्भ कर निम्न लिख जाओ। पंक्तियों की निश्चित संख्या तक पहुँचने के पश्चात् तब से बाई ११ ओर लिखो। इस प्रकार प्रस्तार के निश्चित पंक्तियों की गणना में तुम्हारी पंक्ति की संख्या १ एक अधिक होगी। अब पंक्ति के नीचे बाई ओर से प्रारम्भ करके (ऊपर की पंक्ति के तब से बायें ओर के नीचे कुछ न लिखकर) फिर वही गणना १ से लेकर निश्चित पंक्तियों की संख्या तक उल्टे ढंग में लिख दो। दया:—

(६) छ वर्णों के प्रसार की पंक्ति

६४३२१

2 2 2 2 2 2

निम्न धनन्तर प्रथम-पंक्ति के साथ में धारि धार के १ को अपनी
पंक्ति में (तीसरी) ज्यों का त्यों ही उतार ले और फिर इस
धन-पंक्ति के दूसरे छद्म से गुणा करो और गुटन पत्र में
दूसरे छद्म के नीचे वाले छद्म का भाग दो। लब्धि में धारि
छद्म से अपनी तीसरी पंक्ति का दूसरा छद्म समझे। धन
जो इस तीसरी पंक्ति के दूसरे छद्म को (जो अपनी धार हुआ
) धन-पंक्ति के तीसरे छद्म में गुणा करो, और गुटनपत्र में
उस तीसरे छद्म के नीचे वाले छद्म का भाग दो। लब्धि
धन तीसरी पंक्ति का दूसरा छद्म होगा। बस धन इसी प्रकार
रक किया करते जानो अब तक तुम्हारी दोनरी पंक्ति का
धन दोहरी धार का अन्तिम छद्म एक १ न धार धार। इस
धन के पंक्ति तैयार होगी मेरा को बरो अन्तिम पंक्ति धार।

ध्यान रहे कि घाई और के कोष्टक सब एक सीध में ही रहें । केवल दाहिनी ओर एक एक कोष्टक को कमी के कारण एक प्रकार का सोंपान या सीढ़ी सी घने, फिर अट्ठ भरने वाली समस्त क्रिया उसी प्रकार करो जिस प्रकार वर्णों के साधारण मेरु में की जाती है ।

खण्ड-मेरु

वर्णों की निश्चिन्त संख्या से एक अधिक काष्टक वाली आड़ी पंक्ति बनाओ और उसके नीचे एक काष्टक कम वाली पंक्तियाँ खण्ड-मेरु के समान बनाते चले जाओ, यही तक कि सब से नीचे एक कोष्टक ही रहल्यो । ध्यान रहे कि घाई और के सभी कोष्टक एक सीधी रेखा में रहें, केवल दाहिनी ओर एक एक कोष्टकों को कमी से एक, सीढ़ी सी घने और तुम्हारा चित्र एकावली मेरु के रूप में उलटा रहे ।

अब सब से ऊपर की पंक्ति के प्रत्येक काष्ट में १ का अंक खो और घाई और की खड़ी पंक्ति में २, ३ आदि सीधी जाती के अंक अनन्तम कोष्टक तक लिख जाओ । यथा :—

६ वर्णों का खंड मेरु

१	१	१	१	१	१
२	३	४	५	६	
३	६	१०	१५		
४	१०	२०			
५	१५				
६					

अब वाली कोष्टकों में अट्ठ इस प्रकार भरो, कि प्रत्येक कोष्टक के नैऋत्य अर्थात् उत्तर-पूर्वीय दिशा वाले अथवा यदि अपने कोण

घर के दूसरे मैदान कोण वाले कोष्ठक के अंदर में जोड़कर लेंगे। इनके साथ यह भी करना चाहिए कि प्रत्येक दूसरी पंक्ति के बाईं ओर वाले कोष्ठक के कोष्ठक में दो, तीन, चार, पाँच आदि के संक लिये। ऊपर पर किन्हीं कोष्ठक के मैदान कोण वाले कोष्ठक के बाईं दो कोष्ठक एवं वहाँ दाहिने कोष्ठक में ही काम लगें बाँटें। यथा—



नोट—

दाहिनी ओर के अन्न वाले सभी ओर के कोष्ठकों में १ के अंक लिखें, और प्रत्येक दूसरी पंक्ति के बाईं ओर वाले अन्न कोष्ठकों में यथा क्रम १, २, ३, ४, आदि की गिनती के अंक लिखें।

एकावली-मात्रा-मैद

एकावली-मात्रा-मैद का चित्र दीर्घ होता है बनाओ ऐसा एकवली-मात्रा-मैद का बनाया जाता है, केवल इतनी और विशेष करेंगे कि सब से ऊपर एक कोष्ठक रखें और नीचे के कोष्ठकों की सभी पंक्तियों को दो भागों में विभक्त करें, अर्थात् ऊपर की दो दो पंक्तियाँ बना लें। बाईं ओर के

संख्या में वृद्धि और लघु मात्राओं की संख्या में न्यूनता करनी चाहिए।

खण्ड-मात्रा-मेरु

खण्ड मेरु का चित्र पकायजी-मेरु के चित्र से ठीक उलटा घनाओ और सब से नीचे दो कोष्टक देकर सब पंक्तियों के दाहिनी ओर दो दो कोष्टकों की कमी रखो। सबसे अन्त में एक कोष्टक भी रखा जा सकता है। चारों ओर के कोष्टक एक सीधी रेखा में हो रहने चाहिए। अब इतने अङ्क इस प्रकार भरो कि सब से ऊपरी और चारों ओर की पंक्ति के सभी कोष्टकों में १ के अङ्क हों, फिर खाली कोष्टकों में एक कोष्टक और उसके नैऋत्य कोण वाले कोष्टक के अङ्क को जोड़ कर नैऋत्य के पूर्व वाले कोष्टक में रखो। अब दाहिनी ओर के सब से अन्तिम कोष्टकों के अङ्क ही प्रस्तार के अर्धोत्तर अङ्क होंगे। खण्ड-मेरु से भी वही काम निकलता है जो पकायजी मेरु और मेरु से निकलता है।

पताका

जैसा कि हम प्रथम कह चुके हैं, मेरु-चक्र से किसी संख्या वाले वर्ण-प्रस्तार में इतनी संख्या में द्विगुण, त्रिगुण एवं चतुर्गुण के रूप होते हैं, केवल यही ज्ञात होता है; किन्तु पताका-चक्र की सहायता से यह भी ज्ञात होता है कि प्रस्तार की धेरों में ऐसे रूप प्रथम, द्वितीय तृतीय आदि किस स्थान में स्थिति हैं। इसके बनाने की विधि यह है कि जितने धेरों की पताका बनानी हो, उतने वर्ण वाले मेरु-चक्र की पंक्ति लिखो। उसके नीचे कोष्टकों की दूसरी पंक्ति बना कर उनमें चारों ओर से प्रारम्भ कर एक (१) और उसके दोनों गिनती लिखते चले जाओ। अब प्रथम पंक्ति के जिस जिस कोष्टक में जितने जितने अङ्क हैं उसके नीचे उतने

॥ कोष्टक बनाओ । अथ इन कोष्टकों में अक्षरों को भरों कि—द्वितीय आड़ी पंक्ति के प्रथम एवं द्वितीय कोष्टक के अक्षरों को जोड़ कर कोष्टकों की द्वितीय खड़ी पंक्ति के तृतीय कोष्टक में रखलो । तत्पश्चात् इस जोड़ में प्रथम श्रृंखला अक्षरों को तथा द्वितीय आड़ी पंक्ति के आगे वाले कोष्टकों के अक्षरों में जोड़ कर नवंबर के कोष्ट में रखलो और यही क्रिया आवश्यकतानुसार करते जाओ ।

व्यापक-नियमः—

अ	१	२	१०	१०	२	१
इ	१	२	४	८	१३	३२
उ	३	६	१२	२४		
ए	५	७	१४	२८		
ओ	६	१०	१५	३०		
अक्षर	१७	११	२०	३१		
अक्षर	१३	२२				
अक्षर	१८	२३				
अक्षर	१९	२४				
अक्षर	२१	२७				
अक्षर	२५	२६				

जो अक्षर जोड़ने में प्राप्त हो उसे स में जोड़ो और प्रथम अक्षरों से जोड़ो फिर इसे य से जोड़ो इसी प्रकार करते जाओ जब तक कि सभी कोष्टक पूर्ण न हो जायें । एक खड़ी पंक्ति के पूरी हो जाने पर दूसरी खड़ी पंक्ति को और उसके कोष्टक भरें, किन्तु स्मरण रखो कि जो अक्षर पहिले एक बार कहीं आ चुका है वही अक्षर यदि पुनः प्राप्त हो तो उसे न रखो वरन् उसके

अने शतों पित्तों का बहुत लिखा और अब कभी ऐसा हो
 तभी हो जाने का क्रम व पंक्ति की आदि अष्टा त कोट से प्रारम्भ
 होगा। यद्यपि उक्त विषय में तीसरी पंक्ति के ५ से ४ वे कोटक में
 १ का बहुत प्रान्त होकर लिखा जाना चाहिये था किन्तु यह बहुत
 शिथिल पंक्ति के चौथे कोटक में आ चुका है। अतः इसके अगे
 तक बहुत १० वहाँ लिखा गया है और तत्पश्चात् पाँचवें कोटक
 में शिर व पंक्ति की आदि से प्रारम्भ की गई है और $१० + १$
 (११) = ११ लिखा गया है और फिर ५ वें कोटक में १७ का
 बहुत पहिले आ चुका है नहीं लिखा गया। वरन् उसके अगे
 ४ बहुत निम्नानुसार १ = उसके स्थान पर दिया गया है, और
 उसके नीचे शिर व पंक्ति के ५ कोटक से प्रारम्भ हुई है और
 $१० + १ = ११$ की संख्या दी गई है। इसी प्रकार और सभी
 कोटकों में विषय में भी जानना चाहिये।

नोट—यह सब के देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि
 तीसरी पंक्ति के प्रसार में निम्नलिखित वाले १० रूप, चौथे, १, ५, १०,
 ११, १२ आदि स्थानों के हैं। अब यह की सहायता से इनके
 सम्बन्धित क्रम १११५५, ११५१५, १५११५ सरलता से
 ज्ञात हो सकते हैं।

पात्रा-प्रवाहिका

इसका भी वही उपयोग है जो वर्तमानका का है और इसके
 सारे की विधि से है कि जिसने भाषाओं की पदाला बनायी हो
 उसे ही भाषाओं के शब्दों की पंक्ति लिख ले, फिर उनके नीचे
 वे कोटक बनाओ। प्रत्येक पदाला पर प्रसार की समस्त
 संख्या को सूचित करने वाले बहुत निम्न स्थानों कहते हैं (१, २, ३,
 आदि) लिखें। आठवीं पंक्ति में सब से शीर्षकी और १ का अंक

साक्षात्पताका की दुसरी गति

समस्त गति में जहाँ पर १, २, ३, ४, ५ पंक्ति के झट्टे हैं उन्हें लेते में हटा कर त्रितीय पंक्ति फिर समस्त क्षेत्र के झट्टों को विनियोजित में विनियोजित । दूसरी के झट्टों के विनियोजित में यह स्थान रहे कि दो दो झट्टों के बीच में एक एक कोणक स्थानीय पड़ा रहे । अतः प्रत्येक झट्टा इन झट्टों के कोणकों के स्थान दूसरे कोणक जाइ दो । इस स्थिति पंक्ति के २१ में से २, ३, ४, ५ पंक्ति के घटा कर दूसरे कोणक में । इसी प्रकार चौथी पंक्ति के झट्टे (८) में से ३, ४, ५ पंक्ति के घटा कर दो कोणक झट्टे भव्य, इसी प्रकार तृतीय पंक्ति के झट्टे (८) के चौथी पंक्ति के घटे १३, १४, १५ पंक्ति के झट्टों में से ३, ४, ५ पंक्ति के झट्टे भव्य, इसी प्रकार प्रत्येक पंक्ति की पूर्ति करो । साथ ही स्थान स्थानों कि किसी झट्टे की पुनर्गति न होने पावे इसका ध्यान रखते झट्टे संधर्भ स्थान्य है ।

नोट—समस्त क्षेत्र की पताका में त्रितीय पंक्ति के झट्टे १ के स्थान ही प्रथम पंक्ति का १ पड़ेगा । यथा—
जिस दूसरे पृष्ठ पर देखो ।

१—विचय-रूप

मातृ भाषाओं की पताका

मार्ग लक्ष्य	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०
मार्ग लक्ष्य	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०
मार्ग लक्ष्य	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०
मार्ग लक्ष्य	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०

२—समरूप

मातृ भाषाओं की पताका

मार्ग लक्ष्य	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०
मार्ग लक्ष्य	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०
मार्ग लक्ष्य	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०
मार्ग लक्ष्य	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०

माया-मंकटी

चित्र नं० २

१ कला	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
२ मोर	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
३ मय कला	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
४ गुन	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
५ लप	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
६ वर्ग	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
७ पिपड	०	२	४	६	८	१०	१२	१४	१६	१८	२०

इसी प्रकार अन्य मंडला की मायाया के भी मंकटी चित्र बना सक

परिशिष्ट

हम प्रयत्न ही यह कह चुके हैं कि दोनों में कनों कनों
 दीर्घ वर्ण या स्वर को ह्रस्व तथा कनों कितनी ह्रस्व-स्व
 वर्ण को दीर्घ को नाति अथवा कनों कितनी वर्ण को दीर्घ
 ह्रस्व दोनों के मध्यस्थ स्वर से उच्चारण करने का संयोग
 है, तथा भाषा-गमना आदि में इतने वैकल्पिक-पाठ-स्वातन्त्र्य
 कारण प्रायः अन्तर भी पड़ जाता है। हमारे आचार्यों ने
 विषय पर कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया और कदाचित् इतनी विवे
 चना एवं व्याख्या इत्यादि नहीं की क्योंकि भाषा को वर्ण-माला
 में ऐसे स्वर नहीं हैं जिनका उच्चारण दीर्घ एवं ह्रस्व को मध्यगन-
 ध्वनि के साथ होता है। कदाचित् इन्हीं कारण से कवियों एवं ज्ञान-
 गण के आचार्यों ने ऐसे स्वरों के कुछ पाठ को पाठकों के हा
 ऊपर छोड़ रक्खा है।

यूँ कि हमारे भाषा-विज्ञान में प्रयत्न कोई भी कार्य वैज्ञानिक
 रूप में नहीं हुआ और वर्ण-माला में नवीन परिवर्तनों का देखते हुए
 उनके अनुसार पुनरुद्धार एवं सुधार नहीं किया गया, यही कारण
 है कि यह विषय अनजाने ही पड़ा रहा।

हिन्दी को वर्ण-माला अधिकांश में वही है जो संस्कृत की
 है, यह बात अवरय है कि संस्कृत की वर्ण-माला के कति-
 क वर्ण ऐसे हैं जिनका प्रयोग हिन्दी के बड़े जनों के रूपों में कनों
 होता है। हाँ, संस्कृत के तन्म या कुछ जनों में मन् है
 प्रयोग होता है, किन्तु तन्म या अर्धजनों में मन् है
 अर्धजनों के कारण सज्ज किसे मन्) एवं मन् है
 कितनी प्रान्त विरोध को वेला में
 उनका प्रयोग न होकर उनके

लिए भाषा की वर्ण-माला के कतिपय वर्णों में नये सुधार एवं संस्कार किये गये हैं, तथा ध्वनी और नये सुधारों की आवश्यकता रखते हैं। इन नये सुधारों में से एक सुधार ध्वन्या आधिष्कार कुछ हल्के एवं दीर्घ स्वरों के मध्यस्थ स्वरों की कल्पना करना भी है, जिसकी हमें इस स्थान पर अतीव आवश्यकता प्रतीत होती है क्योंकि इसका प्रमुख सम्बन्ध हमारे काव्याधार इन्द्र-शारव से है।

डाक्टर सर जार्ज ग्रियर्सन को जिन्होंने हिन्दी भाषा में बहुत बड़ा पूर्ण ऐतिहासिक और वैज्ञानिक कार्य किया है, ऐसे स्वरों की आवश्यकता प्रतीत हुई और उन्होंने ऐसे स्वरों को अंग्रेजी भाषा की वर्ण-माला के द्वारा व्यक्त करने के लिए अपनी ओर से कुछ नये विधानों की कल्पना की। और भाषा की वर्ण-माला में भी ऐसे स्वरों के नये रूप दिये हैं :—

। देखो, लिङ्गुइस्टिक सर्वे आफ इंडिया भाग ३ पृ० १।

डाक्टर साहय की इस कल्पना में एक ध्यान यह गटकनी है कि उन्होंने 'ए' के विशेष रूप के लिए इसके रूप को उलटा कर के रक्खा है अर्थात् 'ए' के रूप का विशेष रूप ही उपयुक्त समझा है और 'आ' के विशेष रूप के लिए 'आ' के ऊपर वाली भाषा को वाई से घुमाने की अपेक्षा दाहिनी ओर से घुमा कर ही जगा उसे ऊर्ध्वगत 'रेक' का सा आकार देते हुए रख दिया है। हमें इन रूपों की अपेक्षा पृथक् धीयुन पं० रामशङ्कर जी मुद्द

* अन्य भाषाओं से आये हुए कुछ स्वरों के कुछ वर्णों के लिए भी इसे कुछ वर्णों के रखने एवं चरने उपरिष्ठ वर्णों के बड़े सुधारों के आने की आवश्यकता है।

† The Linguistic Survey of Ind

लिए भाषा की वर्ण-माला के कनिष्ठ वर्णों में नये सुधार एवं संस्कार किये गये हैं, तथा सभी और नये सुधारों की आवश्यकता स्वतः है। इन नये सुधारों में से एक सुधार अथवा प्राधिकार कुछ हृस्व एवं दीर्घ स्वरों के मध्यस्थ स्वरों की कल्पना करना भी है, जिसकी हमें इस स्थान पर अतीव आवश्यकता प्रतीत होगी है क्योंकि इसका प्रमुख सम्बन्ध हमारे काव्याधार मन्द-मात्र में है।^{१०}

डाक्टर सर जार्ज ग्रियर्सन को जिन्होंने हिन्दी भाषा में बहुत खोज पूर्ण ऐतिहासिक और वैज्ञानिक कार्य किया है, ऐसे स्वरों की आवश्यकता प्रतीत हुई और उन्होंने ऐसे स्वरों की अंग्रेजी भाषा की वर्ण-माला के द्वारा व्यक्त करने के लिए अपने और से कुछ नये विधानों की कल्पना की; और भाषा की वर्ण-माला में भी ऐसे स्वरों के नये रूप दिये हैं:—

१ देखो, लिङ्गुइस्टिक सर्वे आफ इंडिया भाग ३ अ० १.

डाक्टर साहय की इस कल्पना में एक बात यह खटकती है कि उन्होंने 'ए' के विलिप्त रूप के लिए इसके रूप को उलट कर के रक्खा है अर्थात् 'ए' के रूप का विलोम रूप ही उपयुक्त समझा है और 'ओ' के विशेष रूप के लिए 'ओ' के ऊपर वाली मात्रा को बाई से घुमाने की अपेक्षा दाहिनी ओर से घुमा कर ही लगा उसे ऊर्ध्वगत 'रेफ' का सा आकार देते हुए रख दिया है। हमें इन रूपों की अपेक्षा पृथक् धीयुत ए० रामजङ्ग जी २३

^{१०} अन्य भाषाओं के साथे कुछ कुछ बातों के कुछ वर्णों के लिए -
ये वर्णों के रखने एवं अपने उपरिष्ठ वर्णों से बने हुए वर्णों के
कल्पना है।

^{११} The Linguistic Survey

निम्न भाग की धर्म-माला के कतिपय धर्मों में नये मुधार एवं संस्कार किये गये हैं, तथा सभी और नये मुधारों की आवश्यकता रखते हैं। इन नये मुधारों में से एक मुधार अथवा आदिष्कार शुद्ध हृदय एवं दौर्ध्र स्वर्गों के मध्यस्थ स्वर्गों की कल्पना करना भी है, जिनको हमें इस स्थान पर अतीव आवश्यकता प्रतीत होती है क्योंकि इसका अनुभव नग्नस्थ हमारे काव्यादाय अन्तः-शास्त्र में है। १०

डाक्टर मन शर्मा प्रियमन को जिन्होंने हिन्दी भाषा में बहुत खोज पूर्ण ऐतिहासिक और वैज्ञानिक कार्य किया है, ऐसे स्वरों की आवश्यकता प्रतीत हुई और उन्होंने ऐसे स्वरों को अंग्रेजी भाषा की वर्त-माला के द्वारा व्यक्त करने के लिए अपने और से कुछ नये विधानों की कल्पना की; और भाषा की वर्त-माला में भी ऐसे स्वरों के नये रूप दिए हैं :—

† देखो, जिगुइस्टिक सर्वे भारत, हिंदिया भाग : छ० १।

डाक्टर नाहब की इन कल्पना में एक बात यह स्पष्ट होती है कि उन्होंने 'ए' के विनिष्ट रूप के लिए इनके रूप को उदाहरण के स्वरूप है अर्थात् 'ए' के रूप का विनिष्ट रूप ही उपयुक्त समझा है और 'ओ' के विनिष्ट रूप के लिए 'ओ' के ऊपर वाली मात्रा को यहाँ ने घुमाने की अपेक्षा दाहिनी ओर ने घुमा कर ही लगा उसे ऊर्ध्वगत 'वेरु' का भा आकार देने हुए रख दिया है। हम इन दोनों की अपेक्षा पूर्वोक्त ध्येय पं० रामजयराज का ।

* 'समस्त भारतीयों से पहले कुछ कुछ हमने के कुछ लोगों के ...
हमें लोगों के हमने हमें समस्त उपनिवेश लोगों के कहें हुए ।
समस्तभारत है ।

⁴ Th. Lingz die Sarro

सरल वर्णों का प्रयोग होता है। संस्कृत की शब्दावली ऐसे परिष्कृत एवं परिमार्जित रूप में है कि उसके शब्दों में ह्रस्व एवं दीर्घ के बीच वाले स्वर के उच्चारण की आवश्यकता ही नहीं पड़ती, इंग्लिश कदाचित् संस्कृत की वर्ण-माला में उसके निर्माणकर्ता विद्वानों ने ऐसे स्वरों को नहीं रक्खा। प्रत्येक भाषा की वर्ण-माला में सर्वेश्वर उन्हीं स्वरों एवं वर्णों का प्राधान्य रहता है जो उस भाषा के शब्दों में निरन्तर प्रयुक्त होते हैं। जो स्वर या वर्ण भाषा के किसी भी शब्द में नहीं आते वे स्वर या वर्ण उस भाषा की वर्ण-माला में कदापि नहीं रहते।

हिन्दी भाषा की शब्दावली में संस्कृत-शब्दावली की सी बात नहीं है, उसमें आनेवाले ऐसे शब्द हैं, जिनके बोलने में ह्रस्व एवं दीर्घ स्वर के मध्यस्थ स्वर की आवश्यकता होती है, ऐसे वक्ता में ऐसे स्वरों का वर्ण माला में स्थान देना सर्वथा अनिवार्य है। यह बात विगंभीरता उस समय अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होगी है जब हम वक्ताभाषा तथा व्यवधी भाषा की तिनका साहित्य में बहुत ऊँचा एवं महत्वपूर्ण स्थान है, और तिनका पहिले बहुत समय तक हिन्दी के काव्य साहित्य में पूर्ण प्राधान्य रख चुका है और अब भी अधिकांश में पाया जाता है, शब्दावली उठाते हैं। हाँ, जब हम अपनी आधुनिक लड़ी बोली की परिष्कृत शब्दावली को लेते हैं, जो अब साहित्य के क्षेत्र में द्रुतगति के साथ अग्रसर हो रहा है, तब हम इसकी आवश्यकता नहीं ज्ञात होता क्योंकि, परिष्कृत लड़ी बोली का शब्द-भण्डार संस्कृत के समान शुद्ध एवं परिमार्जित रूप में होकर ऐसे शब्द नहीं रखता जिनमें ह्रस्व और दीर्घ स्वरों के मध्यस्थ स्वर की आवश्यकता पड़ती हो। अन्य भाषाओं के प्रभाव से प्रभावित होने के कारण हमारी आधुनिक भाषा में शब्दों का एक बहुत बड़ा समुदाय ऐसा आ गया है जिसके

लिए भाषा की वर्ण-माला के कनिष्ठ वर्णों में नये सुधार एवं संस्कार किये गये हैं, तथा अभी और नये सुधारों को सम्पन्न करने रखते हैं। इन नये सुधारों में से एक सुधार कर्ता कनिष्ठक शुद्ध द्वय एवं दीर्घ स्वरों के मध्यस्थ स्वरों को सम्मान देना भी है, जिसकी हमें इस स्थान पर विशेष सम्मान देना चाहिये होता है क्योंकि इसका प्रमुख सम्बन्ध हमारे कान्ठस्थ भाषा शास्त्र में है।*

डाक्टर सर जार्ज ग्रिन्थेन की जिज्ञासे लिखे गए हैं तथा खोज पूर्ण ऐतिहासिक और वैज्ञानिक रूप में लिखे हैं। नये स्वरों की आवश्यकता प्रतीत हुई और उन्होंने ऐसे स्वरों को खोजी भाषा की वर्ण-माला के द्वारा व्यक्त करने के लिए सलाह दी है। से कुछ नये विधानों की कल्पना की, जिनमें भाषा की भाषा में भी ऐसे स्वरों के नये रूप दिये हैं :—

। देखो, लिगुलिस्टिक नये भाषा-विज्ञान में : भाषा ।

डाक्टर साहब की इस कल्पना में एक बात एक सम्बन्ध है कि उन्होंने 'ए' के पिनिष्ठ रूप के लिए इनके रूप को सम्मान देने के रक्खा है अर्थात् 'ए' के रूप का पिनिष्ठ रूप हो सम्मान देना है और 'ओ' के पिनिष्ठ रूप के लिए 'ओ' के रूप को सम्मान देने के रक्खा है अर्थात् 'ओ' के रूप का पिनिष्ठ रूप हो सम्मान देना है। अतः हमें इन स्वरों की आवश्यकता की अपेक्षा दाहिनी ओर से ध्यान देना है। अतः हमें इन स्वरों की आवश्यकता की अपेक्षा दाहिनी ओर से ध्यान देना है। अतः हमें इन स्वरों की आवश्यकता की अपेक्षा दाहिनी ओर से ध्यान देना है।

* अन्य भाषाओं के साथ ही कुछ भाषाओं के कुछ वर्णों के लिए भी ऐसे कुछ नये स्वरों के रक्खे एवं व्यवस्थापित किये हैं। नये सुधारों के करने की आवश्यकता है।

* The Linguistic Survey of India Vol. 3 Part I

सरस-पिङ्गल

ताल' एम० ए० के कल्पित किये हुए रूप अधिक उपयुक्त
ते हैं—

क्योंकि इन रूपों में डाक्टर साहब के रूपों की भाँति विशेष
वस्तु नहीं है, केवल ऊपर की मात्राओं को ही चार और से
गाने की अपेक्षा दाहिनी ओर से लगा कर उनके पूर्ण रूपों से
लौकिक रूप में ही रस देना पड़ता है। हमें न तो डाक्टर साहब
की भाँति पूरे शहर को उलटना ही पड़ता है और न 'ऊर्ध्व रेफ'
के भ्रम होने का हो भय रहता है। हम फिर भी अपनी भाषा के
विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित करते हैं और चाहते हैं
कि या तो शीघ्र "रसाल" जी के ही रूप मान लिये जाय
(जिनके मान लेने में कोई हालि एवं आपत्ति नहीं है) या दूसरे
नये रूपों की व्यवस्था की जाय, जब तक ऐसा नहीं होता तब तक
हम अपने पाठकों से इन्हीं रूपों के प्रयोग करने का अनुरोध
करते हैं।

कुछ अन्य आवश्यक छन्दें

नबि हम कुछ ऐसी छन्दों के नियम और दे रहे हैं जिनका
प्रयोग लड़ी धाजी के कई लघुग्रन्थ कवियों ने प्रयुक्त किया है
और जिनका प्रयोग संस्कृत के कवियों के द्वारा संस्कृत-काव्य में
वाङ्मय के साथ हुआ है। हाँ, भाषा के सांख्यिक-काल में कवियों
ने इनका अवश्य कम व्यवहार किया है।

पञ्च चामर

— यह वृत्ति मोनद वर्णों की होती है, तथा हमें लघु और दीर्घ
के क्रम में छोट लघु और छोट दीर्घ वर्ण होने के समान प्रमाण

• छन्द भाषा '५' और 'जी' के रूप रचने के लिए •
जाने जाते हैं—

रगल, जगल, रगल, जगल और एक अन्तिम वर्ण गुरु होता है ;
यथा : —

उत्ती उदार की कथा सरस्वती बखानती :

उत्ती उदार से घरा हुतार्थ-भाष मानती ।

उत्ती उदार का सदा सजीव कीर्ति-कृ. गी ;

तथा उत्ती उदार को सनस्त खादि पूजती ।

शित्तरिणी

यह वृत्ति १७ वर्णों की होती है, तथा इन्हें रगल, मगल,
नगल, सगल, भगल, और अन्त में एक वर्ण लघु तथा एक वर्ण
दीर्घ होता है ; यथा—

कहाँ स्निग्धा स्निग्धा, सन-वदन वाली रनखिया ।

कहाँ निर्वाचा ये, कठिन धनचारी हरिया ।

लुभाने वाली है, मृदुल-मुख-मध्या भवन की ।

कहाँ पैसी हा ! हा ! कठिन-धरणी है कुवन की ।

मन्दाक्रान्ती

यह वृत्ति बार, छः और सत्त अक्षरों पर विभक्त है साथ कुल
१७ वर्णों अथवा मगल, भगल, नगल और दो तगल दो गुरु वर्णों
से बनती है, यथा—

वैद्यमानन्द-रत्न शित्ते, एक भी बार पाया ।

कोई भी क्या सुरत उत्तरे, वित्त के अन्ध भाया !

पा लेता है सुख-रत्न जो दिव्य एकान्तता में ।

मीठा पाया सुरत सुख है, गाल एकान्तता में ।

सरसी

सहायत भावकों से मिलकर ११ और ११ पर रति देने हुए अन्त
में गुरु और लघु के साथ सरसी-द्वन्द्व बनाया जाता है ; यथा—

माय मानि वैश्यो पेंडि लाड़िलो हमारो ताकौ,
 करि मनुहार सुधा-धार उपार्ज^० हम ।
 साजै सुख सम्पति के सकल समाज भाज,
 बलि 'रतनाकर' की नैमुक निधार्ज^० हम ॥

अभ्यासार्थ-प्रश्न

- १:—पिङ्गल-शास्त्र किसे कहते हैं और उसका क्या उद्देश्य है ।
- २:—काव्य और कविता की परिभाषायें देकर इनका अन्तर बताओ ।
- ३:—काव्य के कितने भेद हैं और उसका सङ्गीत से क्या और कितना सम्बन्ध है ।
- ४:—छन्द और वृत्ति में क्या अन्तर है और उनकी रचना का मूल आधार क्या है ।
- ५:—कविता में छन्द की क्यों और कितनी आवश्यकता है ।
- ६:—हिन्दी-भाषा ने छन्द-शास्त्र को क्या उपहार दिया है ।
 उसका मार्मिक वर्णन करो ।
- ७:—मात्रा (कला) किसे कहते हैं, कविता में उनका क्या स्थान है ।
- ८:—ह्रस्व एवं दीर्घ (लघु और दीर्घ) का सूक्ष्म-विवेचन करो ।
- ९:—यति और गति की परिभाषायें देते हुए कविता में उनका स्थान और उनसे सम्बन्ध रखने वाले गुण-दोषों का संनियम विवेचन करो ।
- १०:—गद्य क्या है और कितने हैं, इनकी रचना कैसे हुई ।

११:—गर्भों के शुभाशुभ उनके हृदय और शरीरों का सूक्ष्म परीक्षण करो ।

१२:—दुग्धाहार किसे कान है शुभ शुभ गर्भों का धिक्छन, उनसे सम्बन्ध रखने वाले छात्रशुद्ध नियमों के साथ करो ।

१३:—द्वन्द्व के कितने मुख्य भेद हैं सूक्ष्म रूप में लिखो ।

१४:—मासिक-द्वन्द्वों और धार्मिक वर्तमानों में क्या अन्तर है स्वरूप रूप में समझना ।

१५:—निर्वाकित पद जिन शब्दों के अन्तर्गत हैं उनके मूलनियम लिखो:—

क:—कहने श्यान मन्दर आज में तुम पे आया ।

ख:—आज आया वसन्त

ग:—अर्गाहित कार्य मेना साथ न शक्ति केन्द्र ।

घ:—वर्षा बिना नाश वर्षा का हुआ ।

च:—अधिक और व्यथा कितना सदैव ।

छ:—नर हो नर हो तुम कादर हो ।

ज:—जहाँ सदैव देव का रूपा विराजती रहो ।

झ:—सुनि रतनाकर को रचना रसीली नख ढाली एरी धानाई सुगीली कर ल्याऊँ मैं ।

झ:—प्राप्ति रत राधन सीं ठाढ़े रघुनाथ हैंसै, जौरी अय विजय को आदी नार दार हैं ॥

ट:—धनि धनि नरस घलघा, जग अस्त कौन ।

ठ:—शुन नागर नागर नाथ विनो ।

ड:—कैसे धुलाइ तपाऊँ तुम्हें इन तातो उसाँल सनीरन मैं ।

